International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197, Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 2; March 2017; Page No. 188-190

प्रेमचंद की सामाजिक चेतना (कहानियों के संदर्भ में)

डॉ. विजय शंकर मिश्र

हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज (सांध्य), नई दिल्ली, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

1936 ई. में लखनऊ में 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम सम्मेलन में अध्यक्षीय भाषण देते हुए मुंशी प्रेमचंद ने साहित्यकार को स्वभावतया प्रगतिशील माना था। निस्सन्देह कोई भी 'वास्तविक' साहित्यकर्मी समाज से निरपेक्ष नहीं रह सकता। जीवन के स्रष्टा–द्रष्टा साहित्यकारों पर तो यह सत्य शत–प्रति–शत लागू होता है। इसीलिए वाल्मीकि[1], व्यास[2], कालिदास[3], तुलसीदास[4], कबीर[5] आदि महाकवियों–विश्वकवियों का 'साहित्य' स्वयं में सामाजिक–सांस्कृतिक इतिहास भी है। कथा–सम्राट प्रेमचंद का साहित्य भी अपने समय के उत्तर भारत के समाजों का ऐतिहासिक दस्तावेज कहा जाता है।

भारतीय समाजों में 'धर्म' के मानवीय, मूल्यवादी, रचनात्मक स्वरूप को नकारने की प्रवृत्ति सरलता से परिलक्षित की जा सकती है। यहाँ समय–समय पर न्यस्त स्वार्थी समूह अपनी संकुचित–जड़ समझ के अनुसार 'धर्म की व्याख्या करते रहे हैं। ये व्याख्याएँ आम तौर पर रूढ़िवादिता एवं जड़ता को प्रश्रय देती दीखती हैं। जड़ 'जातिवाद' इसी का परिणाम है। जाति और धर्म को हथियार बना कर व्यापक समाजों का शोषण एक सामान्य रीति सा बन गया है। मुंशी प्रेमचंद ने ऐस संदर्भों को अतीव सशक्तता के साथ उठाया है। ऐसे प्रयत्नों में मानवीय चरित्रों की विविध भंगिमाएँ उभरती है।

डॉ. राममनोहर लोहिया ने भारतवर्ष के चेहरे पर 'उदासी' देखी। उन्होंने इस उदासी का मूल कारण केवल आर्थिक अवनति या निर्धनता नहीं माना क्योंकि संसार के अनेक राष्ट्र हमसे अधिक गरीब हैं। साथ ही हम हमेशा ही इतने निर्धन नहीं थे, जितने अब हैं और यूरोप–अमेरिका आदि भी हमेशा ही उतने संपन्न नहीं थे, जितने अब हैं। डॉ. लोहिया के अुनसार मुख्य बात यह है कि हमारे राष्ट्र का इतिहास जाति और स्त्री के संदर्भों में बहुत स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं रखता रहा।[6] उन्होंने भारतीय इतिहास की व्याख्या भी इसी दृष्टिकोण से की।[7] विशेष रूप से समूचे मध्यकाल से अब तक जाति और नारी से जुड़े प्रश्नों के मानवीय समाधान प्राप्त नहीं होते। मुंशी प्रेमचंद धर्म के वास्तविक स्वरूप को नकार करउसकी रुग्ण–स्वार्थी व्याख्या करने वाले समूहों को जातिवाद के समर्थक के रूप में देखते हैं। इस दृष्टि से 'कायर', सद्गति, 'सवा सेर गेहूँ' आदि कहानियाँ उल्लेख्य हैं। 'कायर' में जाति की कट्टर शृंखलाओं में बंधे समाज में 'ब्राह्मण' केशव और 'वैश्य' प्रेमा का विवाह असंभव है। प्रेमा की माता का अत्यन्त भोला प्रश्न है कि क्या हिन्दुओं में अंतर्जातीय विवाह होते हैं। यह प्रश्न जातिप्रथा से चालित सामाजिक इतिहास की सोच को विवृत करता है। ऐसी स्थितियों में आत्महत्या ही अंतिम निर्मम समाधान है।[8] 'सद्गति' का दुःखी दलित होने के कारण त्रस्त है। पण्डित जी पूर्ण अमानवीयता के साथ बेहद दर्दनाक स्थितियों में उससे क्षुद्र व्यवहार करते हुए मेहनत करवाते हैं। पण्डित जी से दुःखी की 'चाहत' या आशा–उम्मीद धर्म के वास्तविक स्वरूप से नितांत अपरिचित घोर रूढ़िवादी–अंधविश्वासी समाजों की समझ की कहानी कहती है। उसकी भयावह मृत्यु जातिवादी व्यवस्थाओं का निर्मम–कुत्सित यथार्थ है। इस कहानी में गोंड के विचार और सोच परिवर्तन की क्षीण–सी सूचना देते हैं– रोटी मिले तो पहले, फिर पच ही जाएगी। पुलिस की जाँच का भय दिखाने का भी उल्लेख है।[9] 'सवा सेर गेहूँ' के विप्र जो वस्तुतः एवं तत्त्वतः सूदखोर शोषक महाजन हैं। लेकिन जातिप्रथा से ग्रस्त कुर्मी कृषक शंकर उन्हें महाजन कम और 'ब्राह्मण' अधिक मानता है। उसकी दृष्टि में विप्रजी की यही 'पहचान' है। विप्रजी इस जड़ परंपरावादी मानसिकता का विकराल शोषण करते हैं। ऋण के तौर पर लिया गया सवा सेर गेहूँ साठ रुपए चुकाने के उपरांत भी जस–का–तस ही नहीं, बल्कि बढ़ता ही जाता है। अंततोगत्वा शंकर आजीवन दास बनने पर विवश है। उसके बाद उसका पुत्र भी इसी चक्र में घिरा है। ''ब्राह्मण का कर्जा'' तो चुकाना ही है तथा 'उस जनम के लिए काँटे क्यों बोऊँ' की मानसिकता व्यापक समाजों की चालक शक्ति रही है।[10] ऐसे संदर्भों में मुंशी प्रेमचंद ने शोषक और शोषित दोनों की समझ को अपूर्व कौशल के साथ वाणी प्रदान की है।

'धर्म' के प्रसंगों में समाज की सोच भिन्न दिशाओं में गतिशील रही है। प्रेमचंद ने इनके अत्यंत प्रभावी–मार्मिक वर्णन किए हैं। एक ओर 'गरीब ही हाय' के रामसेवक तथा 'गुप्तधन' के हरिदास और प्रभुदास हैं, तो दूसरी ओर 'बेटों वाली विधवा' का कामतानाथ है। हरिदास–प्रभुदास अनाथ बालक[11] के धन के अपहरण का कुत्सित–घृण्य कर्म करते हुए भी धर्म के उच्च मानवीय मूल्यवादी स्वरूप से परिचित होने के कारण पापबोध से भयभीत है। कामतानाथ संपूर्णतया धर्म–मूल्य–संस्कृति के बोध से शून्य तात्कालिकतावादी हीन मनुष्य है। उसे पिता की तेरहवीं के भोज में आए अतिथियों को मरी चुहिया से भ्रष्ट हुए शोरबे को खिलाने में किसी तरह की हिचक नहीं हैं बशर्ते खाने वालों को इस बात का पता नहीं चले।[12]

इस संदर्भ में 'खून सफेद' कहानी उल्लेख्य है। साधो बरसों–बरस बाद घर आ कर वापिस शहर लौटने को विवश है। क्योंकि 'धर्म' आड़े आता है। इसे ममता के महानतम्–पावनतम् भाव पर आरोपित धर्म–रूढ़ि की दर्दनाक विजय के रूप में देखा–समझा जा सकता है।[13]

भारतीय संस्कृति एवं इतिहास में नारी के प्रसंग में दो सर्वथा भिन्न प्रकार की मानसिकताएँ दिखलाई पड़ती है। एक ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः''[14] तथा स्त्री को गृहिणी, सचिव, सखी, शिष्या, देवी, प्रिया[15,16] आदि मान कर 'देवी' के रूप में प्रतिष्ठित करने की और दूसरी ''त्रिया चरित्रस्य पुरुषस्य भाग्यम, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः''[17] अथवा रहस्य मानने अथवा आजीवन परतंत्र रखने अथवा 'वस्तु' मानने की। प्रेमचंद ने गोदान में मेहता के मुख से यह कह कर कि यदि नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं तो वह कुलटा हो जाती है ओर यदि पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह देवता हो

जाता है,[18] स्त्री को महिमामण्डित करने का प्रयास किया है। यह बोध स्त्री और पुरुष के स्वभाव, चरित्र, मानसिकताओं को अलग–अलग धरातलों पर प्रतिष्ठित करता है। आधुनिक स्त्रीवादी (फैमिनिस्ट) समझ संभवतः प्रेमचंद से सहमत नहीं होगी। उसकी मान्यता पृथक है, लेकिन प्रेमचंद की संवेदनशीलता पर कोई प्रश्न चिह्न लगाना घोर अन्याय होगा। कथा–सम्राट की अनेकानेक कहानियों में उनकी नारी–संवदेना उभरी है। वे नारी के प्रति ''कैसा दृष्टिकोण होना चाहिए'' तथा ''कैसा दृष्टिकोण है''– इन दोनों अवस्थाओं को पाठकों के समक्ष रखते हैं। इसके साथ ही वे ''नारी कैसी होनी चाहिए'' विषय पर भी विचार प्रकट करते हैं। रानी और सारंधा और शीतला[19], गोपा,[20] सुखदा,[21] चिंता,[22] तूरया,[23] गोदावरी,[24] आनंदी,[25] आदि–आदि चरित्र इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

इनमें नारी के बलिदानी– ओजस्वी, स्वाभिमानी, प्रेरक, स्वतन्त्र व्यक्तित्व की पहचान आदि आकांक्षाएँ उभरी हैं उसके स्वभाव की विलक्षणता, पारम्परिक प्रेमवादी समर्पणवादी, जोड़ने की प्रवृत्ति के भी अतीव प्रभावी वर्णन हुए हैं।

मुंशी प्रेमचंद उत्तर भारतीय ग्रामीण समाजों के महानतम् चितेरे हैं। ग्राम्य जीवन उनके कथा–साहित्य में मूर्तिमंत हुआ है। किसान की दरिद्रता, उसकी जातिगत–धर्मगत्–मूल्यगत नैतिकताएँ, उसकी चेतना–मानसिकता–सोच–समझ, शोषण–उत्पीड़न, आंतरिक सांस्कृतिक शक्तियाँ आदि इस महान् कथाकार के साहित्य में जितने और जैसे रूपों में मिलती हैं, उतने और वैसे रूपों में अन्यत्र दुर्लभ हैं।

अंग्रेजों की भारत–विजय, उनकी आर्थिक नीतियों ने चिर स्वायत्त, आत्मनिर्भर गाँव को शहर पर निर्भर, निर्धन, पराश्रित बनाया। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में इसके विस्तृत वर्णन किए हैं। पूस की रात, सद्गति, सती, बडे घर की बेटी, शंखनाद, खून सफेद, गरीब की हाय, सुजान भगत, सवा सेर गेहूँ, नमक का दारोगा, कफ़न आदि शत–शत कहानियाँ ग्रामीण समाजों की शक्ति एवं शक्तिहीनता, हास एवं रुदन, बहुरंगेपन और रंगहीनता का पूर्ण प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं। प्रेमचंद ने शेषित–प्रपीड़ित गाँव में बढ़ती दरिद्रता के हृदयविदारक चित्रण किए हैं। 'सती' में वे लिखते हैं कि ''दरिद्रता में बीमारी कोढ़ में खाज'' होती है– मुलिया का कल्लू यदि दवा–दारू ठिकाने से होती, तो बच जाता।[26]

प्रेमचंद प्रायः सर्वत्र सामाजिक विषमता का पोषण करती पाखण्डी सोच पर पूरी ताकत के साथ प्रहार करते हैं। 'ब्रह्म का स्वाँग', 'कायर' आदि शत–शत कहानियाँ इस तथ्य का निदर्शन हैं। पराधीन भारत, विशेषकर सीधे–सादे ग्रामीण समाजों में पुलिस–तंत्र का आतंक एक सर्वविज्ञात तथ्य है। उसका भ्रष्ट चरित्र भी अनजाना नहीं है। गोदान उपन्यास से ले कर 'मैकू', नमक का दारोगा आदि कहानियों में पुलिस के चरित्र को विवृत किया गया है।

प्रेमचंद के संपूर्ण साहित्य में 'भारतीयता' का आग्रह एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है। श्रीकंठ[27] की विचारधारा इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। 'दो बैलों की कथा' में भारतीयों के रक्षात्मक स्वभाव पर व्यंग्य है, जिसके मूल में रचनात्मक आक्रामकता से मण्डित होने का आग्रह भी देखा जा सकता है।[28]

मुंशी प्रेमचंद संबंधशीलता के आग्रही साहित्यकार हैं। संभवतया इसीलिए वे विपरीत अवस्थाओं अर्थात् संबंधहीनता के भी प्रभावी वर्णन करने में समर्थ हुए है। आनंदी जोड़ने की कला में निपुण है। वह 'बड़े घर की बेटी' इसीलिए मानी गई। भाई–भाई के प्रेम और अदब, देवर–भाभी के रिश्ते इस कहानी में अत्यन्त सहज रूप से चित्रित हुए है। पिता द्वारा दोषी पुत्र को निर्दोष पुत्रवधू पर वरीयता देना पारिवारिक सत्य है। श्रीकंठ औचित्य के आधार पर संबंधों के निर्वाह की मान्यता रखते हैं। सैद्धांतिक तौर पर वे सम्मिलित परिवार की परम्परा के पोषक हैं। प्रेमचंद तस्वीर के दूसरे पहलू के रूप में ग्रामीण ललनाओं का उनके विरोधी होने का उल्लेख भी करते हैं।[29] 'बड़े भाई साहब' में अनुज द्वारा अग्रज का आदर और उसके पितृवत् होने के वर्णन हैं।[30] प्रेमचंद ने विधवा माता के पुत्रों, बहुओं द्वारा तिरस्कार के हृदयविदारक वर्णन किए हैं।[31] 'बेटों वाला विधवा' एक यथार्थवादी, बल्कि अतियथार्थवादी कहानी है। कथा–सम्राट ने स्वभावों एवं मान्यताओं के आधार पर पति–पत्नी के ठंडे होते संबंधों के संकेत भी किए है।[32] 'ब्रह्म का स्वाँग' ऐसी ही कहानी है। इसके समानांतर ऐसी परम्परागत पत्नी भी उपस्थित है जो पति के संदेह के दायरे को अपने परंपराप्रदत्त–संस्कृति प्रदत्त मूल्यों से पराजित कर देती है। 'सती' की मुलिया ऐसी ही पत्नी है। मृत पति की स्मृति उसके अंतर में निरंतर जीवंत है।[33]

शोषण–प्रपीड़न की नींव पर खड़ी हुई व्यवस्थाओं के कारण सामाजिक संबंध स्वस्थ–प्रसन्न स्वरूप नहीं प्राप्त कर पाते। 'दुखी'[34] इसका एक उदाहरण है और हल्कू[35] दूसरा।

मुंशी प्रेमचंद के सामाजिक सरोकार बड़े स्पष्ट हैं। वे शोषणमुक्त समतावादी स्वतन्त्र समाज चाहते हैं। उनके मत में ऐसे समाजों का राष्ट्र ही सांस्कृतिक कहला सकता है।

संदर्भ

1. रामायण, वाल्मीकि
2. महाभारत, वेदव्यास
3. रघुवंशम, अभिज्ञानशांकुतलम, मेघदूतम, कुमार संभव आदि, कालिदास
4. रामचरितमानस आदि, तुलसीदास
5. बीजक, कबीर
6. जाति व्यवस्था (कास्ट सिस्टम), डॉ. राममनोहर लोहिया
7. इतिहास–चक्र (व्हील ऑफ हिस्ट्री), डॉ. राममनोहर लोहिया
8. कायर, प्रेमचंद
9. सद्गति, प्रेमचंद
10. सवा सेर गेहूँ, प्रेमचंद
11. गुप्तधन, प्रेमचंद
12. बेटों वाली विधवा, प्रेमचंद
13. खून सफेद, प्रेमचंद
14. मनु स्मृति, मनु
15. कालिदास, भास
16. कालिदास, भास
17. मनु स्मृति, मनु
18. गोदान, प्रेमचंद
19. रानी सारंधा, प्रेमचंद
20. शान्ति, भाग एक, प्रेमचंद
21. होली का उपहार, प्रेमचंद
22. सती, भाग पाँच, प्रेमचंद
23. फातिहा, प्रेमचंद
24. सौत, प्रेमचंद
25. बड़े घर की बेटी, प्रेमचंद
26. सती, प्रेमचंद
27. बड़े घर की बेटी, पेमंचद
28. दो बैलों की कथा, प्रेमचंद
29. बड़े घर की बेटी, प्रेमचंद
30. बड़े भाई साहब, प्रेमचंद
31. बेटों वाली विधवा, प्रेमचंद

32. ब्रह्म का स्वाँग, प्रेमचंद
33. सती, प्रेमचंद
34. सद्गति, प्रेमचंद
35. पूस की रात, प्रेमचंद